हिमालय की पुकार

अरूण कुमार 'पानीबाबा'

भारत उपमहाद्वीप की अति विशिष्ट पारिस्थितिकीय की कुंजी हिमालय का भूगोल है। लेकिन पिछले दो सौ बरसों में हिमालय के बारे में हमारे अज्ञान का निरंतर विस्तार हुआ है।

हिमालय जितना पराया फिरंगियों के लिए था, हमारे लिए उससे भी अधिक है। जितना और जैसा सर्वनाश फिरंगियों ने दो सौ बरसों में नहीं किया उससे कई गुना भयावह बिगाड़ हमने साठ बरसों में किया है। यहां अविरल, सलिल नदी–नाले, प्राकृतिक ऊर्जा, विविध आर्द्रता और अतुल जैव संपदा के स्रोत थे और है। चालीस–पसाच बरस पहले मध्य हिमालय में लगातार दस–पन्द्रह दिन बर्फबारी होती थी, बीस–पच्चीस दिन शिमला, धर्मशाला, डलहौजी, मसूरी, नैनीताल, अल्मोड़ा, कौसानी, के पर्वत बर्फ से ढके रहते थे। अब इस मध्य हिमालयी श्रृंखला में भी कभी–कभार ही बर्फ गिरती है शायद, तो कुल दो–चार दिन। हमारे नेतृत्व से लेकर विद्वत जनों तक किसी को अनुमान ही नहीं है कि मध्य हिमालय में बर्फबारी क्यों बंद या इतनी कम क्यों हो गई और भौतिक संसाधनों की उपलब्धि में क्या हानि–लाभ हुआ ?

सिंधु–गंगा का मैदान हिमालय के जल–निर्गम (ड्रेनेज) से बना है। प्राकृतिक आर्द्रता की विविधता एक अत्यंत संशलिष्ठ प्रणाली है– भारत उपमाहाद्वीप का समग्र भू–परिदृश्य एक बहुरंगी बुनावट है, जो अपने आप में एक सुनियोजित व्यवस्था है। इस बुनावट में आमूलचूल परिवर्तन के गंभीर नतीजे हो सकते हैं। लेकिन आज तो 'नेतृत्व' और 'विद्वत वर्ग' आर्द्र पूर्वार्ध से शुष्क पश्चिमी अर्धंग को जल प्लावित कर परमात्मा की

तरह सर्वशक्तिमान बनने को आतुर है। पिछले पौने दो सौ बरसों में जितनी सफलता मिली है उसके इतिहास और नतीजों का गंभीर परीक्षण होना चाहिए– वरन साम्राज्यवादी शोषण और षड्यंत्र की समझ अधूरी ही रह जाएगी।

अंग्रेजों के भारत आगमन तक हमारी अतिविशिष्ट जल–चेतना अक्षुण्ण थी– न तो हिमालय की पवित्रता पर कोई हमला हुआ था और न ही जल निर्गम प्रणाली में कोई व्यवधान डालने का प्रयास किया गया था। फिरोज तुगलक के समय में जो पंजाब में नहर निर्माण कर सिंचाई का प्रयोग किया गया वह सौ बरसों में ही दफन किया गया। मुगल बादशाह ने दिल्ली क्षेत्र में शाहजहानाबाद बसाया तो सैकड़ों वर्ग मील भूभाग में फलों के बागों की रक्षा के लिए और लाल किले की खाई में पानी भरने के लिए यमुना से निकले एक रजवाहे का नहर की तरह उपयोग किया।

इस नहर से सिंचाई की इज़ाजत नहीं थी और दिल्ली तक जितना पानी उपयोग में लिया जाता था उससे अधिक जल दिल्ली की अरावली पहाड़ियों के आगोर से यमुना नदी में व्यवस्थित रूप से लौट दिया जाता था। उस युग के अति साधारण भारतीय तक को यह समझ थी कि समस्त नदियों के जल पर पहला अधिकार समुद्र और बाढ़ क्षेत्र का है और जो अंतिम जीवात्मा उस जल पर निर्भर है उसके मूल अधिकार की रक्षा के लिए समस्त जल की निर्बाध अविरलता अनिवार्य है। निरंतर बहना जल की प्रकृति है, इसलिए अविरल जल ही निर्मल है। 'बहता पानी निर्मला' शाश्वत सिद्धांत है।

मानव शरीर में जिस तहर रक्तवाहिनी शिराओं का जाल बिछा है, ठीक उसी तरह धरती की सतह से लेकर पाताल तक विविध आकार–प्रकार की जलधाराओं से प्लावित है। प्रकृति ने जल–निर्गम को व्यापक और विस्तृत बनाने के लिए नाली से नाले और उनसे नदी–नद बनाने का विधान रचा। नदियों की गति और प्रवाह मार्ग की सुरक्षा के लिए बाढ़ और रजवाहों की व्यवस्था की है ताकि पहाड़ों से लाई गाद, मिट्टी और रज नदी के पेट को भरने के बजाय मैदानों में फैल जाए और नदियां अविरल बनी रहें ।

जिसे भी मृदा विज्ञान (सोयल साईंस) का थोड़ा ज्ञान है वह जानता है कि बाढ़ नियंत्रण औपनिवोशिक मुहावरा है। उस युग का वैष्णव जन इस बाढ़ नियंत्रण की हिंसा से अवगत था।

पूरे देश में तालाबों की व्यवस्था मूलतः जल निर्गम की निरंतरता, और सर्दी के मौसम से लेकर गर्मियों तक सूखी हवाओं को आर्द्रता देने के लिए थी। बरसात का कुल पानी तुरंत न बह जाए इसलिए प्रकृति द्वारा निर्मित गड्ढों में उसे रोक लेते थे ताकि सतही आर्द्रता से लेकर पाताल तक जल निर्गम सदैव सक्रिय बना रहे। व्यापक ताल–तालाब व्यवस्था का एक लाभ यह भी था कि मानसून के आगमन से पहले और प्रस्थान के बाद भी स्थानीय स्तर पर नियमित बरसात हो जाया करती थी। सिंधु–गंगा के मैदान का हर गांव लंका की तरह बसा था– सर्दियों की नियमिता और मध्य हिमालय की बर्फबारी इसी मानव निर्मित तरावट पर आधारित थी।

उन्नीसवीं सदी के तीसरे–चौथे दशक से फिरंगी शासकों ने नदियों से छेड़छाड़ शुरू की ताकि किसानों से नहर सिंचाई के नाम पर वसूली की जाए। 1830 में पहली नहर–यमुना दोआब के क्षेत्र में निकाली गई– वहीं के किसानों ने 1857 के विप्लव में सक्रिय हिस्सेदारी की। वह कहानी इस लेख में नहीं सुनाई जा सकती। नहर की जरूरत किसानों को नहीं थी बल्कि उसकी जरूरत पानी का टैक्स वसूलने के लिए कंपनी सरकार को थी।

संगठित प्रयास से पिछले सौ डेढ़ सौ बरसों के अनुभव जनित आंकड़ों का साधारण जन–मानस में व्याप्त लोक विद्या के आलेख में अध्ययन कर यह तथ्य जांचा जा सकता है कि हमारा पारम्परिक जल विज्ञान और कृषि कला कितनी विशिष्ट और वैज्ञानिक थी। जैसलमेर– पूर्ण मरूसलि के किसानों से लेकर मलाबार–त्रावणकोर–कोचीन तक के मछुआरों की आजीविका आज भी लोकविद्या पर आधारित है।

इस देशज विवेक और व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट करने के आयोजन ने आजादी के बाद से निरंतर गति पकड़ी है। पठानकोट से चटगांव तक की तराई कट चुकी है। गंगा नदी की हत्या हो चुकी है। यमुना तो कालपी पहुंचने के पहले ही नष्ट हो जाती है। दिल्ली में यमुना के नाम का जो गंदा नाला बहता है उसे देखने में भी घिन लगती है। जहां दृष्टि डालो हिमालय का सर्वनाश ही दिखाई पड़ता है।

ब्रहम्पुत्र–मेघना–गंगा के जल की अंतर–घाटी हस्तांतरण योजना भारत ने 1970 में ही बनानी शुरू कर दी थी। किन्हीं कारणों से योजना शुरू नहीं की जा सकी। लेकिन चीन ने ब्रह्मपुत्र को मोड़ने की योजना क्रियान्वित कर ली तो एतराज की क्या बात है? आप भागीरथी को बांध चुके हैं तो चीन ब्रह्मपुत्र को क्यों नहीं मोड़ सकता? जब तिब्बत मुक्ति आंदोलन के लिए न संकल्प है न सामर्थ्य, फिर ब्रह्मपुत्र पर चीन के अधिकार को चुनौती कैसे दी जा सकती है?

इस तथ्य में कहीं धोखा नहीं होना चाहिए कि हिमालय के लिए लड़ाई दो अधकचरी आधुनिकताओं के बीच होनी है तो चीन के मुकाबले में हमारी हार सुनिश्चित है। चीन को अमेरिका का कोई खौफ नहीं है। यों भी अमेरिका खनिज़ तेल की जो लड़ाई अरब क्षेत्र में लड़ रहा है उसके चलते वह चीन से बिल्कुल नहीं उलझेगा। आज परिस्थितियां 1962 से बिल्कुल विपरीत है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था को चीनियों का सहारा है। इसलिए इस बात की अधिक संभावना है कि अमेरिकी अनेक मजबूरियों के कारण संकट के दौरान चीन के समर्थन में खड़ा दिखाई पड़े। रूस से किसी भी तरह के सहयोग की उम्मीद ही गलत होगी; बाकी है कौन, जो हमारा सहयोग करेगा ?

बड़ा दुर्भाग्य तो यह है कि आज देश में एक भी नेता दिखाई नहीं पडता जिसे अनुमान हो कि उत्तरी सीमा पर चीन ने भारतीय उपमहाद्वीप की कितनी जमीन पर कब्जा कर रखा है। पाकिस्तान ने अपने सीमांचल में उसे कितना अधिकार दे रखा है? या म्यांमार में चीनियों ने किस किस्म की घुसपैठ बना ली है। किसी नेता को यह अनुमान भी

शायद ही हो कि हिमालय में कुल सीमा कितनी है और वहां कुल मिलाकर तिने मोर्चे खोलने पड़ेंगे। सामरिक रणनीति पर विचार से ज्यादा महत्व हिमालय क्षेत्र में नए विकास का है, उपमहाद्वीप की परिस्थितिकी के आधार पर विश्व–स्तर पर एक भारत–केन्द्रित पर्यावरण आंदोलन शुरू करने का है। लिहाजा पाकिस्तान, बंग्लादेश, नेपाल, भूटान, म्यांमार, श्रीलंका, अफगानिस्तान की सक्रिय भागीदारी और सहकार जुटा कर उपमहाद्वीप की भौगोलिक एकता पर शोध और संवाद आयोजित किए जाएं। ऐसे उपमहाद्वीपीय आधार पर चीन के साथ हिमालय हिमनदों के हालात पर चर्चा संवाद की शुरूआत होनी चाहिए।

एशिया ही यहीं, पूरे विश्व को इस बात से सरोकार होना चाहिए कि हिमालय में जो बर्फबारी होती है उसकी प्रक्रिया क्या है। मध्य हिमालय में बर्फबारी लगातार घट रही है, हिमनद पिघल रहे हैं। इन विषयों में क्या परस्परता है ? हाल–फिलहाल कोई अनुमान उपलब्ध नहीं है कि हिमालय में कुल कितनी बर्फबारी होती है। उसके लिए आवश्यक आर्द्रता या तरावट का स्रोत कहां है ? हिंद महासागर में या चीन सागर में। आधुनिक विज्ञान के जरिए यह जानने का प्रयास तो होना चाहिए कि सिंधु–गंगा के मैदान की आर्द्रता और तराई की तरावट से हिमालय पर्यावरण का रिश्ता क्या है?

आज जो मौसम–विज्ञान, वायुमंडल और आकाश की समझ उपलब्ध है उसके आधार पर यह विमर्श अवश्य बनाया जा सकता है कि 'भारत मानसून' का वैश्विक पर्यावरण पर क्या प्रभाव होता है।

यह तो सहज स्पष्ट है कि हिमालय के दक्षिणी पनढाल का जो महत्व भारतीय उपमहाद्वीप के लिए है लगभग वैसा ही महत्व उत्तरी पनढाल का चीन के लिए है। समग्र दृष्टि से देखें तो हिमालय चीन और भारत की साझा विरासत है। इसकी साझा–संभाल में दोनों की बराबर की भागीदारी और सहयोग अनिवार्य है।

भारत के प्रबुद्ध समाज को अपने राजनीतिक नेतृत्व और स्वयंसेवी संगठनों (एनजीओ) से यह उम्मीद बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए कि वे हिमालय रक्ष के लिए कोई नई पहल करेंगे। पहेली बूझने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त है। भारतीय जनता पार्टी अपने को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की पार्टी मानती है। कैलाश मानसरोवर के लिए सरोकार की बात तो छोड़ दीजिए, गंगा घाटी में सोलह सौ बांध बनाने की योजना भाजपा सरकार द्वारा चलाई जा रही है। स्वामी निगमानंद के आत्मबलिदान के बाद भी इस विषय पर कहीं कोई आलोचना नहीं है कि गंगा पूरी तरह विलुप्त हो गई तो क्या होगा ?

देश भर में एक भी स्वयंसेवी संगठन नहीं, जो देश को आगाह कर सके कि जल–मल शोधन संयंत्र की योजना से गंगा की अविरलता नहीं लौट सकती– इन सभी योजनाओं का स्रोत विश्व बैंक द्वारा प्रस्तावित है जो सिर्फ पचीस–पचास हजार करोड़ रुपए के संयंत्र बिकवाने में रुचि रखता है गंगा को शुद्ध करने में नहीं।

हिमालय चेतना आंदोलन का प्रयास तो समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया की तरह प्रबुद्ध जनों को निजी जोखिम पर शुरू करना होगा। लोहिया ने पचास बरस पहले जो कुछ कहा, लिखा, उसका संदर्भ और परिप्रेक्ष्य बदल चुका है। 'हिमालय बचाओ' का नारा आज भी विश्व–पर्यावरण का एक प्राथमिक मुद्दा है।